'कौमुदीमित्रानन्द' में प्रतिपादित आचार्य रामचन्द्रसूरि की जैन जीवनदृष्टि

कालिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के पट्टशिष्य रामचन्द्रसूरि ने अनेक संस्कृत नाटकों की रचना करके संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण अवदान दिया है। 'कौमुदीमित्रानन्द' भी उन्हीं नाटकों में से एक है। यह कृति श्री श्यामानन्द मिश्र के हिन्दी अनुवाद के साथ पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित हो रही है। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में श्री श्यामानन्द मिश्र ने इस कृति के साहित्यिक पक्ष पर पर्याप्त विस्तार से प्रकाश डाला है, अतः यहाँ उस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा न करके प्रस्तुत कृति में आचार्य रामचन्द्रसूरि ने जैनदृष्टि का निर्वाह किस कुशलता से किया है, इसका किञ्चित् निर्देश करना चाहूँगा।

आचार्य रामचन्द्रसूरि अपनी इस कृति का प्रारम्भ भगवान् ऋषभदेव की स्तुति के साथ करते हैं। न केवल इसके मङ्गलाचरण में, अपितु इस नाटक में चित्रित अन्य सङ्कटकालीन परिस्थितियों में भी वे भगवान् ऋषभदेव की शरण ग्रहण करने का निर्देश करते हैं। यथा—

(१) **यः प्राप निवृतिं क्लेशानुभूय भवार्णवे।**
तस्मै विश्वैकमित्राय त्रिधा नाभिभुवे नमः।। — पृ० १।

(२) **परं भगवतो नाभेयस्य पादाः शरणम्।** — पृ० ३७।

(३) **नाभेयस्य तदा पदानि शरणं देवस्य दुःखच्छिदः।** — पृ० ७६।

मात्र इतना ही नहीं नाटक के अष्टम अङ्क में तो वे मकरन्द के द्वारा जैनधर्म के प्रसिद्ध एवं परमपवित्र पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र के स्मरण का भी निर्देश करते हैं।[1] उस नमस्कार मन्त्र के स्मरण के प्रभाव से न केवल उसके प्राण बच जाते हैं, बल्कि उसकी बलि देने वाला कापालिक स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।[2] इससे रामचन्द्रसूरि की जैनधर्म के नमस्कार मन्त्र के प्रति अनन्य निष्ठा भी प्रकट

---

१. परमेष्ठि नाम पवित्रं मन्त्रं स्मरामि। — यही, पृ० १४७।

२. पुनः पुरुषवपुर्मकरन्दाभिमुखं गत्वा प्रतिनिवृत्य च।
करवालेन कापालिकमभिहन्ति। — यही, पृ० १४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है। कृति के अन्तिम दशम अक में भी उन्होंने नाभिपुत्र ऋषभदेव के स्मरण करने का निर्देश किया है।[३] इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आचार्य ने कृति के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अपनी जैन परम्परा का निर्वाह किया है।

यहाँ स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्य ने पार्श्व, महावीर आदि किसी अन्य तीर्थङ्कर की अपेक्षा प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का ही चयन क्यों किया? वस्तुतः इसके पीछे आचार्य की एक गहन सूझ छिपी हुई है। मात्र यही नहीं, उन्होंने ऋषभदेव का चयन करके भी सम्पूर्ण कृति में कहीं भी उनके लिए ऋषभ शब्द का प्रयोग न करके नाभेय, नाभिसूनु, नाभिसमुद्भव जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ स्वाभाविक रूप से यह भी जिज्ञासा हो सकती है कि उन्होंने भगवान् ऋषभदेव का चयन करके भी उनके लिए ऋषभ का प्रयोग न करके नाभेय या नाभिसूनु जैसे नामों का प्रयोग क्यों किया? यह तो सुनिश्चित है कि जैन परम्परा में ऋषभदेव को नाभिनन्दन, नाभेय आदि नामों से जाना जाता है, किन्तु इस विशिष्ट शब्द के चुनाव में भी आचार्य रामचन्द्रसूरि की एक दीर्घदृष्टि रही हुई है। यह सुविदित है कि ब्राह्मण परम्परा में नाभेय का अर्थ ब्रह्मा भी होता है, यद्यपि उसी परम्परा के ग्रन्थ श्रीमद्भागवत में अष्टम अवतार के रूप में ऋषभ का निर्देश भी नाभिपुत्र के रूप में हुआ है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्रसूरि इस विशिष्ट शब्द का प्रयोग करके अपने इस नाटक को दोनों ही परम्पराओं के लिए ग्राह्य बना देते हैं, ताकि दर्शक और मंचन करने वाले दोनों ही अपनी-अपनी परम्परा के अनुरूप उसका अर्थ ग्रहण कर सकें। फिर भी यह सुस्पष्ट है कि नाभेय शब्द से कृतिकार का वाच्य भगवान् ऋषभदेव ही रहे हैं ब्रह्मा नहीं, क्योंकि कृतिकार को जब भी उनके सन्दर्भ में विशेषण देने का प्रश्न आया, उन्होंने उनके निवृत्तिप्रधान विरक्त स्वरूप का ही चित्रण किया है, जो ब्रह्माजी की अपेक्षा ऋषभदेव के साथ ही अधिक संगत सिद्ध होता है।[४]

पुनः प्रस्तुत कृति में नाभेय और नाभिसमुद्भव के साथ-साथ एक स्थल पर सकलदेवताधि चक्रवर्ती नाभिसूनु[५] शब्द का प्रयोग भी किया है, जो पूर्णतः ऋषभदेव पर ही लागू होता है। नाभेय और नाभि-समुद्भव का अर्थ तो किसी अपेक्षा से ब्रह्मा हो सकता है, किन्तु नाभिसूनु शब्द तो मात्र ऋषभदेव के सन्दर्भ में ही

३. स्मरामि निष्ठितक्लेशं देवं नाभिसमुद्भवम् । — यही, पृ० १८५।

४. यः प्राप निवृतिं, क्लेशाननुभूय भवार्णवे। — पृ० १।
स्मरामि निष्ठित क्लेशं। — पृ० १८५।

५. सकलदेवताधिचक्रवर्ती नाभिसूनु। यही, पृ० १३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटित होता है। जबकि ऋषभदेव के सन्दर्भ में तो नाभिपुत्र होने से तीनों ही शब्द सार्थक हैं। यहाँ नाभिसमुद्भव का अर्थ नाभिकुल समुद्भव ही है। फिर भी यह सत्य है कि उन्होंने नाभेय नाम के प्रयोग के द्वारा अपनी उस उदारदृष्टि का परिचय दिया है, जो जैनधर्म के अनेकान्तवाद पर स्थित है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत कृति में जहाँ ब्रह्मा का निर्देश हुआ है, वहाँ विधाता, स्वयम्भू जैसे शब्द का प्रयोग किया है।

मात्र यही नहीं, आचार्य रामचन्द्रसूरि ने इस नाटक में सर्वत्र जैनधर्म की अहिंसक दृष्टि का भी पूरी निष्ठा से परिपालन किया है। यद्यपि प्रस्तुत नाटक में अनेक प्रसङ्ग ऐसे हैं, जहाँ नरबली के हेतु समस्त व्यवस्थाएँ चित्रित की गई हैं। किन्तु आचार्य ने एक भी प्रसङ्ग पर नरबली, पशुबली को सम्भव नहीं होने दिया।[६]

केवल इतना ही नहीं आचार्य ने स्पष्ट शब्दों में ऐसे हिंसक अनुष्ठानों की आलोचना भी की है, वे लिखते हैं—

अक्रूरं श्रेयसे कर्म क्रूरमश्रेयसे पुनः।
इति सिद्धे पथि क्रूरं श्रेयसे स्पृशतां भ्रमः।।

दूसरों को कष्ट न देनेवाले सत्कर्म का फल शुभ होता है, जबकि दूसरों को कष्ट देनेवाले असत्कर्म का फल अशुभ होता है। इस तरह की व्यवस्था के शास्त्रसिद्ध होने पर भी जो लोग शुभ फल की प्राप्ति हेतु असत्कर्म करते हैं, वे भ्रान्त ही हैं।[७]

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कृति में तीन देव मन्दिरों का चित्रण किया गया है— एक भगवान् ऋषभदेव का, दूसरा कामदेव का और तीसरा कात्यायनी देवी का। आचार्य ने बड़ी ही कुशलता के साथ कात्यायनी देवी के मन्दिर की वीभत्सता का, कामदेव के मन्दिर के सौन्दर्य का और ऋषभदेव के मन्दिर की शान्ति का चित्रण करके अव्यक्त रूप से अपनी वरेण्यता को इङ्गित कर दिया है। इस सन्दर्भ में उनके द्वारा किये गये विवरण प्रस्तुत हैं—

(अ) कात्यायनी के मन्दिर का स्वरूप

केतुस्तम्भविलम्बिमुण्डमभितः सान्द्रान्त्रमालाञ्चित
द्वारं शोणितपङ्किलाङ्गणमदन्मार्जारिभीष्मान्तरम् ।

---

६. यही पुस्तक, पृ० ११०, पृ० १४७, पृ० १८१।
७. यही, पृ० १०६।

Jain Education International · For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोपुच्छोत्थितदीपमश्मकुहरक्रोडप्रलुप्तोल्वण-
व्यालं दर्दुरदाहधूमविधुरं कात्यायनीमन्दिरम् ।।

(ब) कात्यायनी देवी का स्वरूप

नेत्र-श्रोत्र-वरौष्ठ-बाहु-चरण-घ्राणादिभिः प्राणिनां,
मन्त्रैः क्लृप्तबलिर्वसारसकृतस्नानाऽन्त्रमालार्चिता।
कण्ठस्थोरगलिह्यमानबहलप्लीहाङ्गरागा गल-
द्रक्ताऽऽर्द्रानरेन्द्रकृत्तिरसनोत्तंसा मृडानी पुरः।।

भगवती कात्यायनी का यह मन्दिर ऐसा है जिसके ध्वज-स्तम्भ के चारों तरफ (बलिपशु के) मुण्ड लटकर रहे हैं, द्वार (बलि दिये गये पशुओं की खून से सनी हुई अतएव) चिपचिपी आँतडियों की माला से सुशोभित है और आन्तरिक भाग खून के कीचड़ से परिपूर्ण आङ्गन में मस्ती से घूमने वाली बिल्लियों के कारण अत्यन्त भयङ्कर है। इस मन्दिर के दीपस्तम्भों पर गोपुच्छाकार लौ वाले दीपक जल रहे हैं, पत्थरों (से बनी दीवारों) के छिद्रों में भयङ्कर (विषैले) साँप छिपे हुए हैं और नगाड़ों को तपाने हेतु जलायी गयी आग के धुएँ से यह मलिन (धूमिल) हो गया है।[८] पुनः भगवती कात्यायनी के स्वरूप का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं— भगवती कात्यायनी सामने दिखाई पड़ रही हैं। इन्हें पशुओं के नेत्र, श्रोत्र, प्रशस्त ओष्ठ, भुजा, घ्राण आदि अङ्ग मन्त्रोच्चारपूर्वक बलिरूप में समर्पित हैं, ये चर्बी के रस से गीली आँतड़ियों की माला से सुशोभित हैं, इनके शरीर पर तिल्लियों (प्लीहा) का अत्यधिक अङ्गराग (उबटन), जिन्हें गले में लिपटे हुए साँप चाट रहे हैं, लगा हुआ है और ये टपकाते हुए रक्त से अत्यन्त गीले गजचर्म की करधनी रूपी आभूषण से सुशोभित हैं।[९]

कामदेव के मन्दिर का स्वरूप

स्फूर्जद्यावकपङ्कसङ्क्रमलसन्मध्यं जपासोदरै-
र्दूष्यैः क्लृप्तपताकमाग्रकिसलैस्ताम्रीभवत्तोरणम् ।
कौसुम्भैर्घटितावचूलमभितो मत्तालिभिर्दामभिः,
सिन्दूरारुणिताङ्गणं गृहमिदं देवस्य चेतोभुवः।।

यह भगवान् कामदेव का मन्दिर है, जिसका आन्तरिक भाग चमकीले अलक्तक (महावर) के रस के प्रसार से चमकीला हो गया है, जिसके शिखर पर

८. यही पुस्तक, पृ० ६६-६७।
९. यही पुस्तक, पृ० ६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जपाकुसुम के समान गाढ़े लाल रंग की पताका लहरा रही है, तोरणद्वार आम्रपल्लवों से आच्छादित होने के कारण ताम्रवर्ण के प्रतीत हो रहे हैं, सब तरफ (मन्दिर को सजाने के लिए) केसरिया पताकाएँ लटक रही हैं, जिन पर उन्मत्त भ्रमरपंक्ति मँडरा रही है और आँगन सिन्दूर (के गिरकर फैलने) से लाल हो गया है।[१०]

ऋषभदेव का चित्रण

कथमयं सकलदेवताधिचक्रवर्ती नाभिसूनुश्चैत्याभ्यन्तरमलङ्करोति?

(सर्वे प्रणमन्ति)

भद्राम्भोजमृणालिनी, त्रिभुवनावद्यच्छिदाजह्नवी,
लक्ष्मीयन्त्रणशृङ्खला, गुणकलावल्लीसुधासारणिः।
संसारार्णवनौर्विपत्तिलतिकानिस्त्रिंशयष्टिश्चिरं,
दृष्टिर्नाभिसुतस्य नः प्रथयतु श्रेयांसि तेजांसि च।।

ये देवाधिदेव सकल देवों के चक्रवर्ती नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव मन्दिर के मध्य भाग को किस प्रकार सुशोभित कर रहे हैं?

नाभिपुत्र भगवान् ऋषभदेव के दर्शन, जो कल्याणस्वरूप कमलों के लिए सरोवरतुल्य, तीनों लोकों के पाप को नष्ट करने के लिए गङ्गासदृश, लक्ष्मी को नियन्त्रित रखने के लिए बेड़ी के समान, गुण और कलाओं के प्रसाररूपी अमृत के लिए प्रवाहस्वरूप, संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए नौकासदृश और विपत्तिलता के लिए खड्गस्वरूप हैं, हमारे लिए मङ्गलकारक और बलदायक हों।[११]

यद्यपि प्रस्तुत कृति में नरबलि, पशुबलि की समर्थक तान्त्रिक कर्मकाण्डों का चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है, फिर भी रामचन्द्रसूरि ने एक भी स्थल पर न तो उनका अनुमोदन किया है और न उनके द्वारा उपलब्ध सिद्धि का चित्रण ही किया है, जिससे जनसामान्य की उनके प्रति आस्था उत्पन्न हो। अपितु प्रत्येक प्रसंग पर उनकी विफलता का ही चित्रण किया है। जैसा कि पूर्व में सूचित किया है— एक स्थल पर तो नमस्कारमन्त्र के अचिन्त्य प्रभाव के आगे न केवल उन तान्त्रिक साधनाओं की विफलता का सङ्केत किया गया है, अपितु उसमें स्वयं तान्त्रिक की मृत्यु दिखाकर उनके वीभत्स दुष्परिणामों को भी उजागर कर दिया गया है। पुनः जैसा कि हमने निर्देश किया है, रामचन्द्रसूरि ने ऐसी तान्त्रिक साधनाओं में की

१०. यही पुस्तक, पृ० १७७-१७८।

११. यही पुसतक, पृ० १३७-३८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने वाली नरबली आदि को क्रूरकर्म और ऐसे शास्त्र को क्रूरशास्त्र कहकर अपने अहिंसक जैन दृष्टिकोण का पोषण भी किया है।

इसी प्रकार उन्होंने भोगवादी जीवनदृष्टि की भी समालोचना की है। एक प्रसङ्ग में रामचन्द्रसूरि ने कामदेव की स्तुति के ब्याज से भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र को कामदेव के वशीभूत होकर दुर्यश (अकीर्ति) का भागी होना दिखाया है—

जनमहितमहिम्नां विष्णु-शम्भु-स्वयम्भू-
हरि-हय-हिमधाम्नां दुर्यशोनाट्यबीजम् ।

हे कामदेव! आप तो लोकविश्रुत महिमा वाले भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रदेव के दुर्यश के प्रसार के कारणभूत हैं।

कृति के प्रारम्भ में भी ब्रह्मा जी की कामवृत्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

एतां निसर्गसुभगां विरचय्य वेधाः
शङ्के स्वयं स भगवानभिलाषुकोऽभूत् ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा इस निसर्गसुन्दरी की रचना करके स्वयं इसमें अनुरक्त हो गए।

इन संकेतों से यह स्पष्ट है कि आचार्य रामचन्द्रसूरि निवृत्तिमार्गी ब्रह्मचर्य-मूलक जैन जीवनदृष्टि को प्रधानता देते हैं।

यद्यपि रामचन्द्रसूरि के कौमुदीमित्रानन्द में प्रसङ्गानुकूल नारी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, उसमें शृङ्गार की झलक भी दिखाई देती है। फिर भी, प्रस्तुत कृति में उन्होंने कहीं भी मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया है। शृङ्गार के उनके सारे वर्णन संयत और जैन श्रमण की मर्यादा के अनुकूल हैं। नायिका कौमुदी के पति के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं नायक मित्रानन्द की सच्चरित्रता, धर्मभीरुता और कर्तव्यनिष्ठा आदि ऐसे गुण हैं— जिससे यह सिद्ध हो जाता है रामचन्द्रसूरि ने प्रस्तुत कृति में जैन जीवन-मूल्यों के प्रति पूर्ण निष्ठा अभिव्यक्त की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org